जीजिविशा

मैं एक अंधा टीचर और इंसुलिन

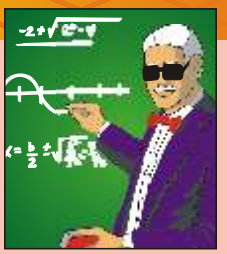

सुरेश कुमार मिश्रा

सबसे पहले मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। मैं हूँ सुरेश कुमार मिश्रा और मेरी उम्र है 53 वर्ष। भोपाल से लगे हुये एक गाँव इस्लामनगर में एक शासकीय प्रायमरी स्कूल में टीचर हूँ। पिछले 20 साल से यहीं बच्चों को पढ़ा रहा हूँ। गाँव में जितने भी साक्षर लोग हैं अधिकाँश को अक्षरज्ञान मैंने ही दिया। मेरे पढ़ाये कुछ बच्चे डिप्टी कलेक्टर बन गये और कुछ डॉक्टर इंजीनियर। परंतु लोग मुझे इनके लिये नहीं जानते। गाँव व मेरे मोहल्ले के लोग मुझे जानते हैं एक अंधे टीचर के रूप में। जी हाँ मैं पूरी तरह अंधा हूँ परंतु फिर भी पूरी मुस्तैदी से बच्चों को पढ़ाता हूँ। उन्हें मुझसे कोई शिकायत नहीं है और वे मुझे पूर्ण आदर देते हैं। मेरी धर्मपत्नी मुझे इस कार्य में मदद देती हैं।

वो ब्लैक बोर्ड पर मेरे निर्देश के अनुसार लिख देती हैं, बच्चों की कापियाँ मुझे पढ़कर सुना देती हैं। बाकी सब काम मैं खुद ही करता हूँ। मेरे पास प्लास्टिक के अक्षर हैं जिनसे मैं बच्चों को अक्षर ज्ञान करवाता हूँ। बच्चे सही– सही अक्षर सीखे या नहीं यह जानने के लिये मैं उनसे अपनी हथेली पर लिखने को कहता हूँ। शुरू में तो यह सब बहुत कठिन था पर अब सब सहज हो गया है। जब मेरी आँखों की ज्योति गई तब कुछ अफसरों ने मुझे नौकरी से निकालने की कोशिश की। एक लंबी कानूनी व सरकारी लड़ाई के बाद मैं अपनी नौकरी बचा पाया। अब विभाग के बड़े अफसर मेरे गाँव में नेताओं को यह दिखाने लाते हैं कि कैसे एक अंधा बच्चों को पढ़ा रहा है।

आइये अब मैं आपको अपने अतीत में लिये चलता हूँ। डॉयबिटीज़ से मेरा सरोकार बचपन में ही हो गया था। दादा को डायबिटीज़ थी वो मीठा नहीं खाते थे या यों कहें खुलेआम मीठा नहीं खाते थे। हम बच्चों से चोरी– छिपे मिठाई मंगवा कर खाते थे। पिताजी गवर्नमेन्ट प्रेस में कम्पोज़िटर थे। उन्हें भी जवानी में ही इस सर्वनाशी बिमारी ने आ घेरा। पिताजी को मैंने अक्सर बीमार ही देखा उन्हें मधुमेह के कारण आँखों पर असर आने लगा व बहुत कम दिखने लगा। वो मुझे अपने साथ प्रेस ले जाते और मैं देर रात तक कम्पोज़िंग का उनका काम करता। बाद में उनकी आँखों की ज्योति जाती रही। पचास की उम्र तक पहुँचते– पहुँचते उनकी हार्ट अटैक से मृत्यु हो गई।

पिताजी की मृत्यु के बाद परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। माँ को भी सदमें से डायबिटीज़ हो गई। हम बच्चों को पढ़ाई की जगह नौकरी की चिंता हो गई।

कुछ साल इधर– उधर काम करने के बाद मैं स्कूल टीचर बन गया। कुछ समय अच्छा बीता और पढ़ाने में मेहनत करने लगा व मजा भी आने लगा। पर किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। जिस बीमारी से बचपन से दहशत होती थी उसी ने मुझ पर भी वार कर ही दिया। बात सन् 1992 की है। बहुत कमजोरी रहने लगी। पेशाब बार– बार जाने लगा व लोग टोकने लगे इतने दुबले क्यों होते जा रहे हो। और फिर मधुमेही का तमगा मुझ पर भी चस्पा हो गया। फिर शुरू हुआ सरकारी डॉक्टरों व अस्पतालों के चक्कर। घोर निराशा व पिताजी की बीमारी की याद कर अनहोनी का डर। सरकारी अस्पतालों से दवाई नहीं मिलती व टीचर को इतनी तनख्हा नहीं मिलती कि बाजार से पूरे महीने दवाई ले लूँ। धीरे– धीरे बीमारी के लिये संवेदनशीलता कम होती गई व मैंने अपने को भगवान भरोसे छोड़ दिया– मजबूरी में ही सही। सन् 1995 में बी.पी. भी हाई रहने लगा। डॉक्टर के पास जाते तो वह जाँचों की लिस्ट दे देते जबकि मुझे लगता किसी तरह सरकारी अस्पताल से दवाई मिल जाये। धीरे– धीरे मैं भी सीख गया कि अस्पताल से दवाई लेने के लिये डॉक्टर साहब को घर पर दिखाकर फीस देनी पड़ेगी। औकात तो नहीं थी फिर भी फीस दी क्योंकि बाज़ार से दवाई खरीदने से तो यह सस्ता ही पड़ता था।

आशा निराशा के हिचकोलों के बीच जीवन घसीटता चला गया। सन् 1998 की बात है, मैं कक्षा में बच्चों को पढ़ा रहा था। एकाएक मुझे लगा कि बच्चों के बेंच टेड़े– मेढ़े और धुँधले से हो गये हैं। आँखें मसली, पानी से धोया और एक– एक आँख को बंद कर देखा। समझ आ गया कि दायीं आँख में कुछ गंभीर समस्या है। फिर सिलसिला शुरू हुआ और मैं अस्पताल में भरती कर दिया गया। डॉक्टरों ने बताया कि शुगर कंट्रोल नहीं रहने की वजह से प्रोलीफरेटिव रेटीनोपैथी हो गई है दोनों आँखों में। इसके कारण दाँयीं आँख में रेटिनल डिटैचमेंट हो गया है। कुछ ही दिनों बाद मुझे ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल सांइसेज नई दिल्ली रिफर कर दिया गया। अनेक जाँचों व कष्टों के बाद मेरी दॉयीं आँख का ऑपरेशन किया गया। ऑपरेशन के बाद मुझे बताया गया कि यह सफल रहा और मैं इस आँख से देख सकूँगा। मैं बेसब्री से पट्टीयाँ खुलने का इंतजार करने लगा। पर ईश्वर को कुछ और मंजूर था। मुझे कहा गया कि आँख में मधुमेह की वजह से इंफेक्शन हो गया है और कुछ ही हफ्तों में मुझे बता दिया गया कि यह आँख हमेशा के लिये खराब हो गई है और मुझे दूसरी आँख का ध्यान रखना होगा। साल भर के भीतर ही बाँयी आँख में भी वही समस्या शुरू हो गई। मुझे कहा गया लेज़र की सिंकाई के लिये AIIMS जाना होगा। यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि यह सुविधा भोपाल में नही थी। AIIMS का पिछला अनुभव बहुत कटु था मैं वहाँ कतई नहीं जाना चाहता था। इसी उहापोह में एक दिन बांयी आँख की रोशनी पूरी

तरह चली गई। बताया गया कि आँख में हेमरेज हो गया है। दोस्तों व रिश्तेदारों की सलाह पर इस बार होमियोपैथी को आज़माया पर कुछ काम न आया और मैं पूरा सूरदास हो गया।

इतने बड़े हादसे से उभरने में काफ़ी समय लगा। बिना आँखों के जीना आसान नहीं था। किसी तरह नौकरी बची तो हौसला बटोर कर फ़िर पढ़ाने मे जुटा। अब मधुमेह को बहुत गंभीरता से लेने लगा। मरता क्या ना करता। विशेषज्ञों की फीस, जाँचे व दवाई में बहुत पैसे खर्च हो जाते। डॉक्टरों ने इंसुलिन देने की रट सी पकड़ ली। मुझे स्वयं सुइयों से डर सा लगता था। पिताजी को भी इंसुलिन शुरू करने के कुछ ही महीनों में मरते देखा था। फिर मेरा अंधा होना भी मेरी इंसुलिन ना लेने की ज़िद में सहायक बन जाता। पत्नी भी डॉक्टर को बता चुकी थी कि वो मुझे इन्जेक्शन कभी नहीं लगा सकती। उसे सुई देख चक्कर आ जाते हैं।

ढेर सी गोलियाँ व कैप्सूल रोज निगलता पर शुगर थी कि 300 से नीचे आने का नाम ही नहीं ले रही थी। बहुत कमजोरी रहने लगी व वज़न भी गिरने लगा। 2005 की परीक्षा का काम जैसे– तैसे निपटाया। मेरा वज़न 60 किलो से घटकर 47 पर आ गया व ज्यादातर समय बिस्तर पर बीतने लगा। ऐसा लगा जैसे अंत अब निकट ही है। पैरों मे असहनीय दर्द व जलन रहने लगी। दर्द रात में बर्दाश्त से बाहर हो जाता और मैं चिल्लाने लगता। पत्नी पर झुंझलाता और वो रात भर पैर दबाती रहती और मुझे पानी पिलाती रहती। दर्द की गोलियाँ, महंगे– महंगे विटामिन के इंजेक्शन सब बेकार साबित हुए। बैठने– उठने के लिये भी सहारे की जरूरत पड़ने लगी। मौत का इंतज़ार भी भारी पड़ने लगा और मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा मुझे जल्दी उठा ले।

कुछ पड़ोसी मुझे उठाकर डॉ. सुशील जिन्दल के यहाँ ले गये। उन्होंने मुझे काफी समय दिया। पर बात फिर इंसुलिन पर आ गयी। ये डॉक्टर साहब कुछ अलग थे। शायद मेरे से भी ज्यादा ज़िद्दी। मेरी क्लास ले ली मधुमेह पर। आपकी इंसुलिन बनाने की ग्रंथि सूख चुकी है इन गोलियों का अब कुछ असर नहीं होगा। जीना चाहते हो तो इंसुलिन लेना ही पड़ेगा। मेरे हर सवाल का उत्तर था उनके पास। धीरे– धीरे धैर्य से बोलते व मेरी हर बात सुनते। दर्द? यदि दर्द हो तो आप मत लेना इंसुलिन। अंधे हो तो क्या हुआ आप देख कर नहीं सुन कर इंसुलिन लगाओगे। उन्होंने मुझे भरोसा दिलाया कि मैं ठीक हो जाऊँगा। उनकी बातों से उम्मीद जगी और मैं इंसुलिन के लिये तैयार हो गया। डॉक्टर साहब ने इंसुलिन का एक पेन दिया और मुझे उस पर एक बटन घुमाने को कहा। हर क्लिक की आवाज यानी एक यूनिट इंसुलिन। बाकी का काम मुझे समझाया डॉक्टर साहब की डायटीशीयन राधिका श्रीवास्तव मैडम ने। उन्होंने जब मुझे इन्जेक्शन लगाया वाकई कोई दर्द नहीं हुआ। अगले दिन उनके सामने मैंने खुद इंसुलिन लगाई। अब सब कुछ बहुत आसान लगा। मैं कान के पास पैन ले जाकर इंसुलिन की यूनिट क्लिक सुनकर सेट करता और सुई का ढक्कन हटा छोटी सी सुई पेट में लगा लेता और बटन दबाने से इंसुलिन मेरे शरीर में चली जाती। दिन में दो बार इंसुलिन में सहजता से लगाने लगा। कुछ ही दिनों में इंसुलिन ने जादू सा असर दिखाया। पेशाब कम हो गई शरीर में शक्ति आने लगी वजन बढ़ने लगा और पैरों का दर्द भी कम होने लगा महीने भर में ही मैं स्कूल जाने को तत्पर होने लगा। लिली कंपनी के एम.आर. श्री विरेन्द्र सक्सेना जी, मेरे घर आकर न केवल इंसुलिन लेने में सहायता करते रहे बल्कि ग्लूकोमीटर से मेरी शुगर चैक कर डॉक्टर साहब से इंसुलिन की डोज़ व अन्य दवाईयों के बारे में भी पूछते रहे। अब मैं ठीक हो चला हूँ व जल्दी ही स्कूल में पढ़ाने लगूँगा। मैं डॉक्टर साहब व उनकी टीम का बहुत आभारी हूँ जिन्होंने मुझे नया जीवन दिया। डॉक्टर साहब ने मुझे अपनी आप बीती वीरेन्द्र सक्सेना जी के माध्यम से लिखवाने को कहा था। उन्होंने कहा था किसी डॉक्टर की ना ही बुराई करें न किसी की बढ़ाई। पर डॉक्टर साहब मैं आपकी बड़ाई करें बिना इस लेख को पूरा नहीं कर पाऊँगा। ● ● ●